सूर की भाषा - भाग २

संख चक्रधर गदा पद्मधर, सीस मुकुट ... -

डा० मनमोहन गौतम का मत है -

लीला पदों में तत्सम शब्दावली अपेक्षाकृत कम है क्योंकि सिद्धांत कथन और साहित्यिक अप्रस्तुत योजना में ही सूर ने संस्कृत भाषा में रचित शास्त्रीय ग्रंथों में संस्कृत की काव्य परंपरा को आधार बनाया। लीला में उनकी स्वानुभूति या मौलिक उद्भावना होने के कारण सहज बोलचाल या परिमार्जित रूप मात्र है। सूरदास जी स्वभावतया ब्रज बोली के सहजता की रक्षा का ही ध्यान रखते थे इसलिए यथासंभव उन्होंने तत्सम शब्दावली में विशेष रुचि नहीं दिखायी है। संस्कृत रचनाओं का आधार

लेने से जहाँ तत्सम शब्दावली का प्रयोग दुर्निवार हो गया है वहाँ भी उन्होंने तत्सम शब्दों की बोलचाल का रूप देने का प्रयत्न किया है जैसे —

"आदि सनातन हरि अविनाशी, सदा निरन्तर घट-घट वासी।
पूरन ब्रह्म पुरान बखानैं, चतुरानन शिव अन्त न जानैं॥
अगुन अरूप अविकार हैं, निराकार है सोई।

डा० गौतम ने लिखा है —

"सूरदास ने कुछ स्तुतियाँ स्तोत्र पद्धति में लिखी हैं। स्तोत्रों में तत्सम शब्दावली सबसे अधिक मिलती है। तत्सम शब्दावली के आधिक्य से कवि को शब्दों में परिवर्तन लाने का अवसर कम मिलता है। फिर भी जहाँ कहीं उन्हें तनिक भी सुविधा हुई। उन्होंने संस्कृत शब्दों पर ब्रजभाषा का माधुर्य चढ़ा ही दिया है।

डा० ब्रजेश्वर शर्मा ने सूर की तत्सम शब्द योजना के संबंधों में लिखा — "रूप चित्रण, मुरलीवादन ऋतु, समय आदि के दृश्य चित्रण में प्रसंगों में तो अनिवार्य रूप से तत्सम शब्दों की प्रचुरता है ही, जहाँ-कहीं कवि कल्पना की ऊँची उड़ान प्रदर्शित करता है वहाँ उसकी शब्दावली तत्सम प्रधान हो जाती है। भावों के चित्रण में भी जहाँ परम्परागत कल्पनाओं के सहारे भावोन्मेष और भावोत्कर्ष दिखाया गया है। वहाँ तत्समता की प्रधानता हो गयी है। ये प्रयोग काव्य को साहित्यिक परंपरा के अनुरूप उच्च धरातल पर प्रतिष्ठित करने में सहायक है। तत्सम शब्दों के प्रयोग में कवि ने यद्यपि सरल और प्रचलित ध्वनियों का कदाचित सदैव ध्यान रखा। पर ऐसे शब्दों की संख्या भी कम न होगी जिनकी ध्वनियाँ अपेक्षाकृत कुछ कठिन और सामान्य लोगों में कम प्रचलित है। ऐसी ध्वनियों को उसने यथासंभव उच्चरित ध्वनियों के अधिक से अधिक निकट लाने का प्रयास किया है। जैसे — करूणा, सम, विनती, दच्छि आदि। परन्तु अधिकतर ध्वनियाँ या तो स्वभावतया दच्छि आदि। परन्तु अधिकतर ध्वनियाँ या भाषा में खप जाने वाली हैं या कवि उन्हें ध्वनि परिवर्तन के बिना ही खपाया है — जैसे! — अम्बर, अपवाद, अग्नि, जीवन, तनु, दधि, कृपा, क्रीड़ा, खंजन आदि।

तद्भव शब्द :— डा० गौतम के अनुसार — इसके अधिक प्रयोग का कारण यह है कि उन्होंने व्यवहारिक भाषा को अधिक महत्व दिया है। तद्भव शब्दावली की बहुलता के कारण भाषा का आडम्बरहीन सहज सौन्दर्य स्वभावतः ही बच गया है।

संस्कृत के ही शब्दों को ऐसा कर्णप्रिय सरल रूप दिया गया है कि वे ब्रजभाषा की प्रकृति के सर्वथा अनुकूल हो गए हैं। उनसे भाषा की मान्यता भी जाती रही है। जैसे - अँकवारि (अँकमाल) अँचरा (अँचल) सोग (शोक) हियरो (हृदय) आदि।

देशज शब्द :—

सूरकाव्य में अचगरी, अमाट, अबीठ, औन्चट, धाटी आदि देशज शब्द प्रयुक्त हुए हैं।

अवधी आदि अन्य भाषाओं के शब्द — सूर की भाषा में अवधी भाषा के शब्द भी मिल जाते हैं। जैसे - हरुस, मोर, तोर हमार, जिनि, खोइस आदि। उन्होंने बुन्देलखण्डी के मोहयो, सहिबी आदि गुजराती के बियो, पंजाबी के प्यारी, प्राकृत के थायर आदि के शब्द भी यत्र तत्र मिलते हैं।

विदेशी शब्दों का प्रयोग :—

सूर ने अरबी फारसी का प्रयोग अधिक किया है। जैसे :— अबीर, अमीर, खसम, कागद, खबर जहाज, दगा, महल, जहाँ आदि।

सूर की भाषा में शब्द शक्तियों का विनियोग :—

लाला भगवानदीन ने सूरदास की ब्रजभाषा को शुद्ध ब्रजभाषा नहीं माना है। उन्होंने लिखा है कि — "शुद्ध ब्रजभाषा में कवित्त लिखनेवालों में घनानन्द और रसखान का नम्बर सबसे पहले आता है। सूरदास के पद गाने के काम में आते हैं। अतः उनमें मधुर भाषा का होना आवश्यक है। दूसरे उनकी कविता में श्रीकृष्ण जी की लीला गाई गयी है। अतः श्रीकृष्ण जी की विहार भूमि की भाषा होने और लालित्य होने के कारण ही ब्रजभाषा इस काम के लिए सर्वथा उपयुक्त थी।"

पुष्टिमार्ग में दीक्षित होने के उपरान्त ही सूर की भाषा में अधिक कलात्मकता आती है। सूर की भाषा में प्रयुक्त भाषा सहज एवं अभिधा प्रधान है। सूर में लीला वर्णन की प्रधानता होने के कारण कवि ने भागवत के आधार के अतिरिक्त अनेक नवीन उद्भावनाएँ की हैं। इनके प्रसंगों में उनकी भाषा की कलात्मकता एवं व्यंजना प्रधान हो गयी है। मुरली प्रसंग और भ्रमरगीत प्रसंग लक्षणा एवं व्यंजना प्रधान होने के कारण अत्यंत मार्मिक हो गया है। इसलिए सूर ने अपने प्रसंगों में लक्षणा और व्यंजना का और सामान्य प्रसंगों में अभिधा का प्रयोग किया था। ~~सूरसाग~~ 'सूरसागर' में अभिधा

शक्ति का प्रयोग ही अपेक्षाकृत अधिक है किन्तु यह प्रयोग स्वभावोक्तिपूर्ण कलात्मक एवं रसात्मक है।

अर्थ गौरव :- डा० ब्रजेश्वर वर्मा :- शब्दों का चमत्कार और अर्थ गांभीर्य कवि ने सबसे अधिक लाक्षणिक और व्यंग्य प्रयोगों द्वारा सिद्ध किया। सूरसागर में लाक्षणिक और व्यंग्य प्रसंगों की भरमार है जैसे — तन मन लियो अंजोर। टेढ़ा बांधत पाग। कहाँ फूली आवत री राधा। लूटन देहु श्याम अंग शोभा। प्राण रहे मुरझाइ।

सूर की भाषा व्यंजना का सौन्दर्य

सूरदास के काव्य में व्यंजना शक्ति का प्रयोग व्यापक रूप से हुआ है। डा० मनमोहन गौतम ने सूरदास के अभिव्यंजना कौशल का निरूपण करते हुए लिखा है — "शब्दों में व्यंजना शक्ति का प्रयोग कवि ने वहाँ किया है जहाँ वह रसावेश से आत्मविभोर हो गया है। लीला के निरूपण और वर्णन में तो प्रायः अभिधा से ही काम लिया है पर वस्तु वर्णन के साथ ही जहाँ कवि स्वानुभूति के व्यक्तिकरण में प्रवृत्त होता है, वहाँ वाच्यार्थ अथवा लक्ष्यार्थ से काम नहीं चलता और कवि को व्यंजना का सहारा लेना पड़ता है। बाल लीला के प्रत्येक पद में इस प्रकार की पंक्तियाँ मिलती हैं जिसमें कवि ने व्यंजना से किसी निजी आत्मानुभूति प्रस्तुत की है। वाच्यार्थ की दृष्टि से गोपियाँ कृष्ण की उलाहना माखन चोरी के लिए यशोदा से करती हैं। किन्तु व्यंग्यार्थ उनके हृदय की प्रेमासक्ति को व्यक्त कर देता है।

तेरे लाल ने मेरो माखन खायो।
दुपहर दिवस जानि घर सूनो, ढूंढ़ि ढिंढोरि आपही खायो।

विरह प्रसंग में व्यंजना का चमत्कार —

बरू ए बदराऊ बरसन आए।
अपनी अवधि जानि नंद-नंदन गरजि गगन घन छाए।

इस प्रकार मौन संबंधी पदों में भी व्यंजना का चमत्कार दिखाया है। भ्रमरगीत प्रसंग में सूर ही नहीं सभी कृष्ण भक्त कवियों द्वारा प्रयुक्त व्यंजना का आदर्श उदाहरण स्थल है। भ्रमरगीत प्रसंग की उद्भावना ही व्यंजना के द्वारा की गयी है। विरह की अनुभूति, प्रकृति का उद्दीपन रूप में चित्रण, उद्धव की भर्त्सना, योग का तिरस्कार। ये सभी व्यंजना के अनेक उदाहरण हैं। उद्धव के गंभीर ज्ञानोपदेश का खंडन करते हुए गोपियों अत्यंत सरल और व्यंजनात्मक उक्तियों में निर्गुण तत्व की अपेक्षा [illegible] व्यर्थता सिद्ध करती हुई करती है —

तुम ही कहत सकल घट व्यापक और सनाद तें निकट ।
नख सिख लौं तन जरत निसदिन निकरि करत क्रिम सिरेर ।
सूर की भाषा में भाव और भंगिमा, हाव और भाव, सूक्ष्म मनोदशाओं का सजीव चित्रण करने की पूर्ण क्षमता है । उपहास और विद्रूप करते समय सूर की भाषा विशेष रूप से व्यंग्यमयी एवं चपल हो जाती है जैसे —

कहाँ कहाँ ते आए हो ।
जानति हौं अनुमान मनो तुम जादवनाथ पठाए हो ।

ऊधौ भली करी तुम आये ।

भ्रमरगीत की भाषा में साहित्यिकता की पुट सर्वाधिक है ।

सूर की भाषा सौष्ठव —

डॉ० मनमोहन गौतम ने सूर की भाषा की सजावट और अलंकृत के इन साधनों की विस्तृत विवेचना की है —

1. अनुप्रास — सूरदास स्वामी सुखसागर
2. अन्त्यानुप्रास — बिहरत गोपाल राइ, मनिमय रचे अंगनाइ ।
   लरकत परि रंगनाइ, घुटुरुनि डोलैं ।
3. तुक — निकुर निरे धात ओन स्वान पर जैसो ललिता
   या रस ही में मगन राधिका संगी, हरि नहीं लले

(4) वीप्सा — मुरि मुरि चितवति नंद गली ।
(5) पुनरुक्ति प्रकाश — आजु तौ बधाइ बाजै मंदिर महर के
   फूले फिरैं गोपी ग्वाल ठहर-ठहर के ।
(6) अर्थ ध्वनन —
   ललित आँगन खेलैं, ठुमुकि ठुमुकि डोलैं ।
   झुनुक झुनुक बोलैं पैजनी मृदु मुखर ।
(7) कान्तिगुण —
   मानों भई घन घन अंतर दामिनि ।
(8) औज्ज्वल्य —
   घन दामिनी — दामिनि घन अंतर सोभित हरि व्रज भामिनी ।
(9) मधुरता —
   मुरली मधुर बजाई स्याम ।
   मन हरि लियौ भवन नहीं भावै, व्याकुल व्रज की बाम ।

प्रवाहमयी भाषा ! —

सूर की भाषा अत्यंत प्रवाहमयी है। डा० मुंशी राम शर्मा ने सूर की भाषा के बारे में कहा है —
" सूर के शब्दों के प्रयोग सोचने नहीं पड़ते। वे अपने आप आते हैं और परिणामतः वर्णन में वेग और प्रवाह भर देते हैं। निम्न पद में भाव स्वाभाविक रूप से प्रकट हुआ है। भाषा द्रुत गति से बिना किसी अवरोध के आगे बढ़ती है,

झहरात झहरात दावानल आयौ।

डा० ब्रजेश्वर वर्मा! — "कवि के शब्द प्रयोग की सबसे बड़ी विशेषता है उसकी व्यापक संग्रह शक्ति। पात्र और परिस्थिति के विचार से जिन शब्दों को उसने उपयुक्त समझा उसका प्रयोग करने में उसे इस बात का संकोच नहीं हुआ कि किस श्रेणी अथवा किस उद्गम के हैं। उसके काव्य में शब्द अर्थ के अधीन होकर प्रयुक्त हुए हैं

सूर की भाषा में माधुर्य गुण भी पाया जाता है। सूर के काव्य में चित्रोपम वर्णन का बाहुल्य है। सूरसागर में दृश्य चित्र और भाव चित्रों की प्रचुरता है —
दृश्य —

नरवर भेष धरें ब्रज आवत।
मोरमुकुट मकराकृति कुंडल कुटिल अलक मुखपर छवि छावत।

एवं —

ललित मुख चितवन मुसकाने।
आधु हँसी पिय मुख वह अवलोकत दुहुन मनहि मन जाने।

कहीं सूरदास ने चित्रण में चमत्कार सृजन या शब्द क्रीड़ा का प्रदर्शन किया है। दृष्टकूट पद ऐसे ही हैं।

सूर ने ध्वन्यार्थमूलक शब्दों का प्रयोग देशज शब्दों में भी अधिक किया है। ध्वन्यार्थक शब्दावली भाषा को सजीवता देती है। जैसे - कलमलात, किलकनत, किलकार, घरघर, झनकार, झूक आदि।

वर्ण योजना के द्वारा भी भावों का चित्रण सामने आता है।

अर्थ ध्वनन शब्द बाल क्रीड़ा में मिलते हैं। जिनमें ध्वनि ही अर्थ की व्यंजक है। डगमगाते बालक का चित्रण —
डगनि डगमगाति डोलत, धूरि धूसर अंग।
गौतम के अनुसार अर्थ ध्वनन का प्रयोग सूर के ओजप्रधान प्रसंगों दावानल और गोवर्द्धनधारण में है।

सूर के दृष्टकूटों की भाषा' —

सूरदास के दृष्टकूटों में उनकी भाषा के मिलतर स्वरूप के दर्शन मिलते हैं। सूर ने दृष्टकूटों में भाषा को कुरूप क्यों बनाया है? डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी — "मध्यकालीन धर्म साधना में बताया है कि सूर ने युग से पूर्व संध्या या संध्या भाषा हठयोग संबंधी ग्रंथों में प्रयुक्त होती थी। इस भाषा में उलटी या (अप) उक्तियों की प्राधान्य है किन्तु सूर पहले समझ लेने पर यथार्थ अर्थ प्रकट हो जाता है। वस्तुतः यह वक्रता शैली का ही चमत्कार था। केवल स्थूल अर्थों के स्थान पर गूढ़ अभिप्राय की अभिव्यक्ति ही इस भाषा शैली का ध्येय था। सूर को अपने युग में तथा पूर्व युग में प्रचलित एवं संत कवियों द्वारा प्रयुक्त कूट शैली से परिचित थे। संध्या भाषा या गुह्य वाणी की परंपरा नाथों और संतों तक चली आयी और सूर की इस धारा के पारिभाषिक रूप से परिचित थे। अतः संभव है उनकी कूट शैली का मूल इस गुह्य वाणी की परम्परा में रहा हो।"

लोकोक्तियों का प्रयोग:—

सूर ने अपनी भाषा को सुन्दर और शक्ति प्रदान करने के लिए लोकोक्तियों एवं मुहावरों का बहुलता से प्रयोग किया। आकाश बाँधना एक प्रसिद्ध मुहावरा है —

एक बाँधति आकाश बात झूठी सो सहै।

लोकोक्ति का उदाहरण —

प्रीति कर काहु सुख न लह्यौ।

होनी होउ सो होइ।

डॉ० मनमोहन गौतम के शब्दों में लोकोक्तियों का प्रयोग — "सूरदास जी ने सर्वत्र कथन की पुष्टि में किया है। उक्ति की वक्रता इनका अनिवार्य गुण है। लोकोक्तियों का परिष्कार भी प्रायः उन्होंने किया है। सूर की अनेक वक्र उक्तियाँ भी लोकोक्तियों का रूप ले चुकी हैं। इस प्रकार इनकी लोकोक्तियाँ तीन प्रकार की हैं — "प्रचलित, परिष्कृत लोकोक्तियाँ तथा सूर की निजी उक्तियाँ जो आगे चलकर लोकोक्तियाँ बन गयीं।" सूर के मुहावरे अनेक अर्थ गाम्भीर्य के द्योतक हैं।